RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-10
October-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i10.013

मोहन राकेश रचित नाटक 'आधे–अधूरे' में कथ्य और शिल्प का अध्ययन

राखी

'आधे–अधूरे' सातवें दशक का महत्वपूर्ण नाटक है। इसमें राकेश ने अपने पूर्व नाटको की तरह किसी ऐतिहासिक आधार को न ग्रहण कर समकालीन जीवन की संवदेनाओं को सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया हैः यह नाटक केवल मध्यवर्गीय परिवार के साक्षात्कार का ही नाटक नहीं है बल्कि नाटककार इसके माध्यम से व्यक्ति के अधूरेपन की कहानी कहने का प्रयास किया है। असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बैचैन नर–नरी आर्थिक तंगी के कारण अपने दाम्पत्य जीवन में एवं बच्चों के जीवन में विष घोल देते हैं।

'आधे–अधूरे' का सार्वाधिक महत्व उसके भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति है जिसका सामाजिक बोध के नाटकों में प्रायः अभाव ही दृष्टिगत हुआ है। नेमिचंद्र जैन के शब्दों में– **''आधे–अधूरे' का महत्व यह है कि वह आज के यथार्थ को सीधे पेश करता है' अतीत को किसी कथा के माध्यम स नहीं।''**[1]

स्वंतत्रता के पश्चात मध्यवर्ग में आर्थिक विषमताओं को क्रमशः पारिवारिक बिखराव, मानसिक तनाव और नैतिक पतन को बढ़ावा मिला। नाटककार राकेश ने 'आधे–अधूरे' में आज की संत्रासपूर्ण परिस्थितियों की कटु संभावनाओं का संकेत दिया है। मध्यवर्गीय जीवन में आने वाली शुष्क और विनाशकारी रिक्तता को उघाड़ने वाला यह नाटक मनुष्य के खोखलेपन संबंधों के सतहीपन तथा जीवन–आदर्शो व आस्थाओं के लडखडाते मानदंडों को सजीव रूप में प्रस्तुत करता है भौतिक मूल्यों के चकाचौंध और आर्थिक खोखलेपन ने मनुष्य को नंगा करके रख दिया है और पति–पत्नी के सम्बन्ध को भी संबंध के जमीन पर से खिसका कर असंबंध की जमीन पर ला पटका है।[2]

'आधे–अधुरे' नाटक तनाव और संघर्ष के तीखेपन से आक्रान्त है। नाटक के संघर्ष की ती खी परिणति झल्लाहट, असंतोष तथा चरित्र–पुरकार में देखी जा सकती है इसमें जीवन के विघटन और ऊब की सघन अनुभूति और प्रायः दोहरे संघर्ष प्रस्तुत करते है। इसमें सामाजिक संबंध जीया जा रहा है। स्त्री–पुरूष में संबंधों का आपसी आकर्षण नहीं हैं बल्कि संबंध का मनचाहा सामाजिक निर्वाह है। पात्र स्व्यं में अपूर्ण रहते हुए भी, अधूरे रहते हुए भी एक दूसरे के अधूरेपन पर नजर रखते हैं और पूरेपन के तलाश में प्रायः प्रत्येक पात्र घर से बाहर झांकता है, निकलता भी है। किन्तु बार–बार टकराकर निरशा लिए गए यहीं लौट आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पात्रों का पूर्णता की तलाश मे बाहर निकलना और विफल होकर वापस आ जाना उनकी नियति बन गई है' पति महेन्द्र और पत्नी सावित्री स्व्यं तो अपूर्ण ही है; किन्तु दोनों मिलकर भी पूर्ण नहीं हो पाते, प्रयास करके भी इस अधूरेपन की दल–दल से नहीं निकल पाते और अपने आंतरिक खंडता को जीने के लिए बार–बार जाकर भी लौट आना उनकी बाहयता हैं। सावित्री की भी कुछ ऐसी ही स्थिति है।[3]

यह नाटक नाट्य–कृति पारिवारिक विघटन की गाथा है। इस अभिशप्त कुटुम्ब का हर एक सदस्य एक–दूसरे से कटा हुआ है। घर की त्रासदायक 'हवा' से वे अपन और एक–दूसरे के लिए जहरीले हो रहे हैं। बड़ी लड़की 'बड़ी लड़की बिन्नी' घर के कलह स उब आती है और एक पुरूष (माँ का प्रेमी मनोज) के साथ भाग खड़ी होती है फिर भी वह इस वातावण से अपने को मुक्त नहीं कर पाती और निर्लज्जतापूर्वक पुनः घर में आ जाता हैं लड़का पत्रिकाओं से अभिनेत्रियों की रंगीन तस्वीरें काटता हुआ उस मौके का इंतजार में है, जब वह भी यहां से निकल सकेगा। अपने पिता के लिए उसके मन में करूणा है, माँ के लिए आक्रोश। वह बड़ी बहन के प्रेम में विश्वास नहीं करता, उसे घर से निकलने का एक जरिया मानता है। 'छोटी लड़की' माता, पिता, बहन, भाई किसी के प्रति लगाव महसूस नहीं करती अपनी छोटी–छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति से बेहद कड.वी होकर वह कैंची की तरह जुबाब चलाती है और यौन–संबंधों में दिलचस्पी लेने लगती है, जो उसकी आयु से कहीं आगे है। उसकी बदमिज़ाजी दिन–पर–दिन बढ़ती जा रही है, क्योंकि पिता की बेकारी, माँ के पुरूष–मित्रों और बड़ी बहन क घर से भाग जाने के कारण उसे बाहरी लोगों की कुस्सित बातें सुननी पड़ती हैं दफ्तर और घर मे दिन भर खटती सावित्री सिर्फ बिन्नी भी उससे इसी सवाल की तलबगार है कि इस घर में ऐसा क्या है, जो यहाँ से निकल जाने के बाद भी उसके और मनोज के बीच काली छाया क समान आ जाता है? अर्थात नाटक में वैवाहिक जीवन मध्यवर्गीय विडम्बनाओं के कारण परिवार का प्रत्येक व्यक्ति आधा–अधूरा रहकर अपने–अपने ढंग से संत्रास भोगता है। यह विडम्बना आर्थिक मनोवैज्ञानिक दोनों–कारणों से है। वास्तव में नाटक का लिखित रूप अपने में पूरा सर्जन ही ही है। किन्तु यदि उसे रंगमंच पर प्रदर्शित न किया जा सके तो वह अधूरा ही है। डा. गोविन्द चातक ने लिखा है कि **''नाटक–कृति अपने में अपूर्ण है, यह समग्र नाट्य–कृति के बिना अर्थहीन है।''**[4] किसी नाटक को मंच तक लाने के लिए नाटककार के बाद परिचालक, अभिनेता,

RRIJM 2015, All Rights Reserved

दृश्यसज्जाका, रूपकार, प्रकाशयोजनाकार आदि अनेक लोगों की जरूरत पड़ती है। 'आधे–अधूरे' का कई बार सफल मंचन होना इस नाटक के रंगमंचीयत के सभी कसौटियों पर खड़े उतरने को दर्शाता है यह नाटक श्यामनंद जालान, सत्यदेब दुबे, ओम शिवपुरी जैस प्रसिद्ध निर्देशकों को निर्देशन में प्रदर्शित हो चुका है।

'रोकश' जी गहरे रंगानुभव से जुड़े थे। इसलिए उन्होंने नाटकों में रंग–भाषा का सार्थक प्रयोग किया है। साहित्य की भाषा और रंगभाषा का सार्थक प्रयोग किया है साहित्य की भाषा और रंगभाषा में जो फर्क होता है उसे इन्होंने समझा था। रंग–बिम्बों की प्रकृति को समझना अति कठिन कार्य है और राकेश इस कार्य में कुशल थे। 'आधे–अधुरे' हिन्दी के कुछ गिने–चुने नाटकों की परंपरा की अगली कड़ी है। शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग बोलचाल की दृष्टि से आम आदमी की है। उसमें अभिव्यजंना की नाटकीय स्थितिओं के श्रव्य एवं दृश्य बिम्बों के सार्थक प्रयोग हैं।

मोहन राकेश ने यद्यापि इस नाटक में अंक–विभाजन नहीं किया है तथापि कथावस्तु का विन्यास इस प्रकार हुआ है कि स्वमेव अंकों की स्थिति स्पष्ट हो जाती हैं अंक के स्थान पर अंतराल–विकल्प कहा गया है और मंच कुछ क्षण क लिए खाली हो जाता है। नाटक क आंरभ में ही परिवार के सभी सदस्यों स हमारा परिचय हो जाता है घर के सामानों की अस्त–व्यस्तता से उस घर में रहने वाले लोगों के अस्त–व्यस्त अर्थ अव्यवस्थित व्यक्तित्व का संकेत मिल जाता है।

का. सूट वा.– जो कि पुरूष एक दो...
स्त्री–उम्र चालीस को छूती..
बड़ी लड़की–उम्र बीस स ऊपर की...
छोटी–लड़की–उम्र बारह और तेहर के बीच...
लड़का–उम्र इक्कीस के आसपास...[5]

सब रूपों में इस्तेमाल होने वाला वह कमरा जिसमें उसके व्यतीत स्तर के कई एक टूटते अवशेष–सोंफा–सेट... इाडनिंग–टेबल... आदि किसी–न–किसी तरह अपने लिए... जगह बनाए है...[6]

नाटककार ने प्रकाश–व्यवस्था एवं संगीत के द्वारा नाटक की सफलता के चरम सोपान पर स्थापित कर दिया है। प्रकाश योजना के माध्यम से पात्रों के मानसिक उथल–पुथल को अभिव्यंजति किया गया है–

एक खंडहर की आत्मा की व्यक्त करता हुआ संगीत,
लड़के का काटी तस्वीर को बड़े–बड़े टुकड़ों में कतरना,
प्रकाश आकृतियों का धुंधलाकर कमरे क अलग–अलग,
कोनों में सिमटना, अंधेरे के साथ–साथ संगीत का रूकना,
और कैंची का चक्–चक् सुनाई देना...[7]

इन सबसे घर की जर्जरता और बिखराव के साथ मानवीय संबंधों की निरर्थकता व्यंजित है। **अंत में कैंची की चक्–चक् ध्वनि घर के सदस्यों के आपसी संबंधों के निरर्थकता को व्यक्त करते हैं। कैंची का स्वर जीवन–मूल्यों के अंत को ही संकेतित करते हैं नाटक के आरंभ में। ही अधूष्टा टी–सेट आलोकित होता है** फिर फरी किताबों और टूटी–कुर्सियों आदि से से एक–एक। कुछ सेकेंड बाद प्रकाश सोफे के उस भाग पर केन्द्रित हो जाता है जहाँ बैठा काला सूट वाला आदमी सिंगार के कशा खींच रहा है। उसक सामने रहते प्रकाश उसी तक सीमित रहता है, पर आलोकित हो उठता है।

आधुनिक स्वांतन्त्र्योत्तर नाटकों की परंपरा में प्रकाश संयोजन क विविध आकर्षक शिल्प और कौशल के दर्शन होते है एक ही मंच के पुरातन एवं नवीन अनेक दृश्यों की प्रकाश–वृत्त क युक्तियुक्त प्रयोग से नाटकों को अर्थवत्ता प्रदान की गई है। प्रकाश के इस विलक्षण प्रयोग स अधूरा घर दर्शकों की चेतना पर हमेशा हावी रहता है। और नाटक की वस्तु प्रतीकात्मकता को भी सहज बोघगम्य बनाने मं सहायक है।

भाषा की दृष्टि स 'आधे–अधूरे' अन्यतम प्रयोग है। वस्तुतः इसी नाटक में राकेश की नाट्य–भाषा की तलाश पूरी होती है। इस नाटक के मूल मं है 'शब्द' और उसके उच्चारण की विविध, भांगीमा। कथ्य के अनुरूप ही शब्दों का बखूबी प्रयोग है। डॉ. गोविन्द चातक का मत है कि– **"इसमें सहजा, ताजगी, लोच और चालूपन है वह नाट्य–भाषा की संपूर्ण संभावनाओं और आंतरिक शक्तियों का उपयोग करता दिखता है।"**[8]

'आधे–अधूरे' की भाषा हरकत की भाषा है। उदाहरण के लिए–

एक दिन... दूसरा दिन... साल... दूसरासाल...
कब तक? क्यों? घर–दफ्तर...
चख–चख किट–किट..... ।[9]

सावित्री के आजीवन भटकाव व अपूर्ण इच्छाओं स उत्पन्न हताशा और बिखरते घर को समेटने की व्यर्थता, इन संवाद क बीच कबर्ड का झटके से बन्द करना, चप्पलों को ठोकर मारना, सफेद बालों को ढ़कने, उसाँस लेने आदि क्रियाओं से मानसिक तनावों और अस्थिरता की अभिव्यक्ति हुई है 'घरघुसरा' 'रबड़ का टुकड़ा' जैसे समाज मं प्रचलित शब्दों के प्रयोग से इसकी समकालीनता बढ़ गई है। आम आदमी की भाषा होते हुए भी सर्जनात्मक शक्ति और रंग तत्वों स पूर्ण है।

संवाद–लय की दृष्टि से भावनाओं का उजागर करने में अधिक सक्षम है शब्दों और वाक्यों की लय, एक संवाद का दूसरे संवाद से परस्पर संघात, पात्रों के बोलने का लहजा, वाक्य–विन्यास तथा पात्रों की अस्थिरता एवं विंसगाति को जो सहजता प्रदान करते है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। डॉ. रीता कुमार' अपने मत व्यक्त करते हुए लिखती है। **"इस नाटक की भाषा हमारे युग के विखंडित व्यक्तियों के प्रमाणिक स्वर बोल उठे है।"**[10] **द्विजराम यादव' का मानना है कि –"आधे–अधूरे की**

भाषा एक दम बदल गयी है। यह भाषा नितांत बोलचाल की भाषा है इसलिए उसक वाक्यों की बनावट बदली गई है..... क्योंकि इस नाटक का वातावरण, पृष्ठभूमि, तेवर इनके पिछले दोनों नाटकों से बदला हुआ है।''[11] वास्तव में भाषा के द्वारा यथार्थ की वास्तविक पकड़ है। पैनी तीखी–व्यंग्यभरी, अकृत्रिम व तल्खभरी नाटकीय भाषा का प्रयोग है।

अभिनेयता की दृष्टि से सरल–सहज, भाव संप्रेषणीय नाटक है। समकालीन जीवन की यथार्थ झाँकी प्रस्तुत करता है। नाटकीयता मे इतना पूर्ण कि मंच पर अमिट प्रभाव और संभावनाएँ छोड़ जाता है। नाटक का मंचन बंद और खुले दोनों प्रकार के प्रेक्षाग्रहों में हो सकता है। नाटक के आरंभ में ही धूल–भरा वातावरण मध्यवर्गीय परिवार की झाँकी प्रस्तुत करता है दृश्य की विंसगाति पात्रों की विसंगाति को उभारते है प्रतीकात्मक प्रयोग ही उनकी निजी विशेषता है। फाइलें झारना, कैंची से तस्वीर काँटना, कार्टून बनाना, तुतलाकर बोलना, पैंट में कीड़ा धुसने का नाटक आदि के माध्यम से उनकी रंगदृष्टि का परिचय मिलता है।

पूरा नाटक ही एक सशक्त बिम्बहै। निर्देशक ओम–शिवपूरी के शब्दों में– **''यह समकालीन जीवन का पहला सार्थक नाटक है.....'आधे–अधूरे' आज के जीवन के एक गहन मूर्त करता है। इसके लिए हिन्दी क जीवंत मुहावरे को पकड़ने की कोशिश की गई है।''**[12]

'आधे–अधूरे' का अंत भी अमिर प्रभाव छोड़ जाता है। लाठी टेकता हुआ महेन्द्रनाथ का उसी घर में पुनः लौटना, सावित्री का गहरी नजरों से देखना, गहरा होता हुआ अंधेरा माती धुन आदि अमिट नाटकीय प्रभाव पैदा करता है।

डा. गोविन्द चातक का मत है–'आधे–अधूरे की सिद्दि समसामयिक कथ्य के साथ–साथ उसकी रंगानुभूमि और भाषिक संरचना में है।'[13] जगदीश शर्मा का मानना है कि–यह नाटक मोहन राकेश की सर्वाधिक समृद्ध रंगचेतना की देन है... .....कथा में अतीत के स्थान पर वर्तमान के भाव से मानव–नियति के अभिशाप का अनुभव और निकट से होता है'[14]

कुछ आलोचकों ने इसके परे नाटक के नाकारात्मक पहलूओ पर भी ध्यान अवगत कराया है। **''आधे–अधूरे' के चरित्र परिकल्पना मे सूक्ष्मता या सृजनात्मक कल्पनाशील कम है, संग्रह–वृत्ति अधिक लगती है। स्वभाव व व्यवहार की कई प्रकार की विशेषताएँ एक ही चरित्र मे एक साथ इकट्ठी कर दी गई है जो अलग–अलग** दिलचस्प होकर भी रचना की दृष्टि में एक दूसरे को काटमी और तोड़ती है। महेन्द्रनाथ दब्बू और पर निर्भर है। व्यक्तित्व हीन–सा इंसान है जो दरिंदा भी बन जाता है और उसकी इस दरिंदगी को सावित्री जैसी स्त्री 22 वर्ष तक बर्दाश्त करती है। सिंघानिया में इतने सारे व्यक्तियों का असंगत मेल है कि वह कैरीकेचर बन गया है। जुनेजा के बारे मे शरू से एक प्रकार के स्वार्थी दृष्ट व्यक्ति की छवि बनायी गई है पर अंततः वह इतना समझदार साबित होता है। कि सहानुभूति महेन्द्रनाथ के साथ होने लगती है। सावित्री के व्यक्तित्व में बेहद एकहरापन है, शुरू से आखिर तक सिर्फ चिर–चिरेपन के सिवाय इसका और कोइ रूप नहीं उभरता। यह बात भी स्पष्ट नहीं होती की इतने सारे पुरूषों क साथ उसके तकराहट संबंध किस तरह के है? क्या शारीरिक भी?– महेन्द्रनाथ के साथ उसके तकराहट का क्या यह भी एक कारण है? यह संकेत मान लिया जाए तो नाटक का अर्थ ही बदलने लगता है। पर लेखक ने इस मामले में असावधानी बरती है।''[15]

'आधे–अधूरे' पूरी तरह यथार्थवादी शिल्प का नाटक है। जिसमें इंसान की बाहरी और भीतरी दुनिया को यथासंभव ब्यौरा और परिचित रूप में रूप में पेश किया है। इस शिल्प में प्रस्तावना और उसके माध्यम से एक ही अभिनेता द्वारा पाँच भूमिकाएँ निभाना बहुत संगत नहीं है। प्रस्तावना भी नाटक के बारे में अलग किस्म की अपेक्षाएँ पैदा करती है। इस दृष्टि से काला सूट वाला आदमी एक अनावश्यक भले ही चमत्कारपूर्ण आडम्बर जैसा लगता है।[16]

बेशक, इस तरह की ब्यौरों की और भी कुछ बातें आधे–अधूरे के कथ्य और शिल्प की कमजोरी और अस्पष्टता के बारे में कही जा सकती है। मगर एक विशिष्ट सृजनात्मक कृति के रूप में यह निर्वादित है कि 'आधे–अधूरे' समकालीन नाटक लेखक की एक बड़ी–अलब्धि है इसकी विषय वस्तु प्रासंगिक ही नहीं, बदलते हुए समाज की एक तीखी विंडबना को मूर्त करता है। जिसमें पीड़ा–व्यपार में पर्याप्त अनिवार्यता और विश्वसनीयता है। प्रसंगों क संयोजन में नाटकीय कुशलता है, चरित्र कई प्रकार से सतही और आयामी होने के बावजूद जाने–पहचाने और प्रमाणिक लगते हैं भाषा में नाटकीयता, संक्षेप, एकाग्रता, मितव्ययता तो है। इसलिए रंगमंचीय, रंगभाषा के आलेख के रूप में 'आधे–अधूरे उचित ही लोकप्रिय है। इससे हिन्दी रंगमंच के सार्थक नाटकों में खुद को स्थापित किया है। और भाषा को नयी दिशा प्रदान किया है।

संदर्भ सूचीः–

1. नाटककार मोहन राकेश, अग्रवाल, पृ. 117
2. नाटककार मोहन राकेश, अग्रवाल, पृ. 178
3. रंगमंच कला और दृष्टि डॉ. गोविन्द चातक पृ. 33
4. आधे–अधूरे, राधा कृष्ण प्रकाशन, (पात्र : XV)
5. आधे–अधूरे, राधा कृष्ण प्रकाशन, (पात्र : XVI)

6. आधुनिक नाटक का मसीहा : मोहन राकेश– डॉ. गोविन्द चातक, पृ. 75
7. आधुनिक नाटक का मसीहा : मोहन राकेश– डॉ. गोविन्द चातक, पृ. 140
8. आधे–अधूरे, मोहन राकेश, पृ. 68–69
9. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक – डॉ. रीता कुमार, पृ. 151
10. मोहन राकेश के नाटक – द्विजराम यादव, पृ. 151
11. नटरंग अंक–21, पृ. 19
12. नटरंग अंक–21, पृ. 37
13. रंगमंच कला और दृष्टि – डॉ. गोविन्द चातक
14. मोहन राकेश के नाटक – डॉ. शारदा प्रसाद
15. मोहन राकेश के सम्पूर्ण नाटक : भूमिका नेमीचंद्र जैन
16. मोहन राकेश के सम्पूर्ण नाटक : भूमिका नेमीचंद्र जैन

RRIJM 2015, All Rights Reserved